राजनीतिक प्रजातंत्र बनाम सामाजिक प्रजातंत्र

महमूद खान

सामाजिक विज्ञान विषय का शिक्षण यह अवसर देता है कि सामाजिक-राजनीतिक परिघटनाओं का सन्दर्भ लेकर हम बच्चों के साथ संवैधानिक मूल्यों, लोकतांत्रिक मूल्यों व नागरिक दायित्वों की खुली चर्चा कर सकें, मत भिन्नताओं को आमंत्रित कर सकें और विविध दृष्टिकोण को जगह दे सकें। प्रस्तुत आलेख में महमूद ख़ान कहते हैं कि बच्चों के साथ उन सामाजिक मुद्दों पर कक्षा में अवश्य बात करनी चाहिए जो उनके और आसपास के समुदायों / क्षेत्रों में घटित होते हैं और बच्चे उनके भागीदार बन रहे होते हैं। यदि हमने अपनी कक्षाओं में इस तरह के अवसर नहीं बनाए तो हमारे देश के भावी नागरिक एकांगी दृष्टिकोण लेकर आगे बढ़ेंगे और इससे लोकतंत्र के सामने नई चुनौतियाँ उभरकर आएँगी। सं.

पिछले वर्षों में नागरिक अधिकारों को लेकर सत्ता प्रतिष्ठानों के साथ संघर्ष की घटनाएँ बहुतायत में रही हैं, जो एक तरह से लोकतंत्र में जनता की राजनीतिक चेतना और संवैधानिक अधिकारों की दावेदारी को पुष्ट करती हैं। लेकिन दूसरी तरफ़ ये सोचने पर मजबूर करती हैं कि क्या संघर्ष अपरिहार्य है? क्या संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों की बहाली का सांस्थानिक स्वरूप मज़बूत नहीं किया जा सकता जिसकी व्यवस्था संविधान में स्पष्ट तौर पर है और जिसके लिए सरकारें काम करती हैं?

संघर्ष एक रास्ता हो सकता है लेकिन जवाबदेह व्यवस्था बनाने की दिशा में और नागरिक शिक्षण की दिशा में क्या करना चाहिए कि हमारी भावी पीढ़ी एक बेहतर नागरिक के रूप में तैयार हो सके और देश की लोकतांत्रिक व्यवस्था व संवैधानिक मूल्यों के प्रति उनका सरोकार बन सके। इस मुद्दे पर काफ़ी विचार-विमर्श के बाद मेरे मन में सवाल आते हैं कि क्या इस तरह की घटनाओं को शैक्षिक विमर्श का मुद्दा नहीं बनाना चाहिए? सामाजिक विज्ञान विषय का शिक्षणशास्त्र क्या इस तरह के मुद्दों को कक्षा में डील करने के अवसर की ओर कुछ इशारा करता है? क्या इस तरह के शैक्षिक विमर्श समाज और देश की कुछ मदद कर सकते हैं? क्या स्कूलों में आने वाले बच्चों के साथ इस तरह के मुद्दों पर शैक्षिक विमर्श किया जाना चाहिए?

दरअसल जब हम अपने अतीत को देखते हैं तो पाते हैं कि हम लम्बे समय तक एक सामन्ती राज व्यवस्था में अनुशासित हुए लोग हैं। उस राज व्यवस्था और समाज व्यवस्था के अपने आदर्श एवं मूल्य रहे हैं, जिनको हमने पीढ़ी-दर-पीढ़ी जिया और परम्परा के रूप में आगे बढ़ाया। कालान्तर में हमने अपने देश में लोकतंत्रात्मक राज व्यवस्था की स्थापना की। चूँकि दोनों राज व्यवस्थाओं के आदर्श एवं मूल्य एक दूसरे के बिलकुल विपरीत हैं, ऐसे में बार-बार हमारे सामने यह चुनौती आ खड़ी होती है कि सदियों से चली आ रही परम्पराओं, जिनमें हम पूर्वजों से प्रशिक्षित होते आए हैं और संवैधानिक आदर्श व मूल्यों के बीच जब टकराहट होती है तो किसे

अपनाएँ। अभी हाल ही के दौर में देश इस तरह के आदर्श और मूल्यों के बीच की टकराहट (सबरीमाला मन्दिर में महिलाओं के प्रवेश) को लेकर तनाव से गुज़र रहा है। एक तरफ़ सदियों की परम्परा और विश्वास है तो दूसरी तरफ़ आधुनिक लोकतंत्रात्मक व्यवस्था के संवैधानिक आदर्श व मूल्य और उनकी रक्षा के लिए सर्वोच्च न्यायालय का फ़ैसला।

इस तरह की दुविधा को ध्यान में रखते हुए ही डॉक्टर भीमराव अम्बेडकर ने संविधान सभा में बोलते हुए कहा था, "मात्र राजनीतिक प्रजातंत्र पर सन्तोष नहीं करना है। हमें हमारे राजनीतिक प्रजातंत्र को एक सामाजिक प्रजातंत्र भी बनाना चाहिए। जब तक उसे सामाजिक प्रजातंत्र का आधार न मिले, राजनीतिक प्रजातंत्र चल नहीं सकता। सामाजिक प्रजातंत्र का अर्थ क्या है? वह एक ऐसी जीवन-पद्धति है जो स्वतंत्रता,

चित्र : हीरा धुर्वे

समानता और बन्धुत्व को जीवन के सिद्धान्तों के रूप में स्वीकार करती है।"

उक्त सन्दर्भ में मेरा विश्वास है कि हमें उन संस्थाओं को मज़बूत करने की ज़रूरत है जिनके माध्यम से अपनी भावी पीढ़ी को संवैधानिक आदर्श एवं मूल्यों में प्रशिक्षित किया जा सके। स्कूल एक ऐसी ही संस्था है। मैंने सरकारी स्कूलों में एक छोटा-सा प्रयास करके देखा है। उस प्रयास के दौरान हुए कक्षागत अनुभवों को इस आलेख के पहले भाग में रखना चाहता हूँ। ये अनुभव अनुसूचित जाति / अनुसूचित जनजाति अधिनियम पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए फ़ैसले के विरुद्ध भारत बन्द के अगले दिन यानी 3 अप्रैल, 2018 को जयपुर के एक सरकारी स्कूल के 9वीं कक्षा के बच्चों के साथ किए गए विमर्श के हैं। स्कूल के बच्चों के साथ ऐसे विमर्श का अवसर तब बना जब सर्वोच्च न्यायालय के फ़ैसले के पक्ष में भारत बन्द करवाया गया। दूसरे भाग में सामाजिक विज्ञान विषय से जुड़े नीतिगत दस्तावेज़ों के आलोक में मेरे इस काम का विश्लेषण है।

कक्षा-कक्षीय अनुभव

मैंने बच्चों को अपना और अपनी संस्था का नाम बताया। बच्चों से सवाल किया कि कल स्कूल कौन-कौन आए थे? कक्षा में उपस्थित लगभग 18 बच्चों (6 लड़के और 12 लड़कियों) में से आधे ही स्कूल आए थे। जब पूछा गया कि इतने कम क्यों आए थे? तो जवाब मिला, "सर, कल भारत बन्द था।" दरअसल मैं तो सोचकर ही गया था कि मुझे भारत बन्द पर बच्चों से संवाद करना है। बातचीत को आगे बढ़ाते हुए मैंने कहा, "भारत बन्द की वजह से कल देशभर में क्या-क्या हुआ?" बच्चों ने एक-एक कर कई बातें बताईं, मसलन– बस और रेलों को रोका गया, छोटी गाड़ियों को तोड़ा गया, थाने में आग लगाई गई, बसों को जलाया गया, दुकानों में लूटपाट और तोड़फोड़ की गई, इसकी वजह से जयपुर शहर में लगभग 2500 करोड़ रुपए का व्यापारिक नुक़सान हुआ, आदि। मैंने इन सबको श्यामपट्ट पर लिख लिया। मेरा अगला सवाल था, "इतनी सारी बातें तुम्हें कहाँ से पता चलीं?" जवाब मिला, "सर, आज के अख़बार से।"

फिर बच्चों से पूछा, "भारत बन्द किसने करवाया था और वो भारत को बन्द क्यों करवाना चाहते थे?" जवाब मिला, "अनुसूचित

जाति एवं अनुसूचित जनजाति समुदाय ने बन्द करवाया था।" लेकिन क्यों करवाया था इसकी स्पष्टता बच्चों को नहीं थी। मैंने बात बढ़ाने के लिए कहा, "अच्छा, कल मैं भारत बन्द करने के लिए कहूँगा तो भारत बन्द हो जाएगा?" जवाब मिला, "आपके अकेले के कहने से नहीं होगा।" "तो इसका क्या मतलब हुआ?" बच्चे एकदम चुप हो गए। मैंने फिर से कहा, "भारत बन्द कराने से एससी एवं एसटी समुदाय को क्या मिला?" बच्चों में से कोमल नाम की लड़की ने कहा, "सर, उनकी माँग सरकार तक पहुँच गई।" कक्षा में उपस्थित शिक्षिका ने पूछा, "माँग पहुँचाने के लिए भारत बन्द करना ज़रूरी था क्या?" बच्चों ने कहा, "अपने अधिकार जब छीने जाते हैं तो ऐसे ही लड़ना पड़ता है।" मैंने पूछा, "कौन-सा अधिकार छीना गया और किसने छीना?" कक्षा में एक बार फिर से सन्नाटा था।

बात आगे बढ़ाने के लिए मैंने कहा कि मुझे आप लोगों की बातचीत से दो-तीन बातें समझ में आई हैं। पहली बात यह कि अपने अधिकारों के लिए लड़ना पड़ता है। दूसरी बात कि माँग मनवाने या सरकार तक अपनी बात पहुँचाने के लिए रैली, प्रदर्शन और भारत बन्द जैसे क़दम उठाने पड़ते हैं और तीसरी बात, कि अकेले की बात कोई नहीं सुनता।

लेकिन ये बताओ कि भारत बन्द जैसे क़दमों का हमारे समाज पर किस तरह का प्रभाव पड़ता है? बच्चे एक साथ बोले, "सर, इस तरह के बन्द से जनता की परेशानी बढ़ जाती है। आपस में भी दंगे-फ़साद हो जाते हैं जिनमें कई बार लोग मर जाते हैं। जैसे, कल की हिंसा में ही 10 लोग मर गए।" मैंने पूछा, "लोग आपस में क्यों झगड़ा करते होंगे?" सोनी नाम की बालिका बोली, "सर, जिन लोगों की माँग होती है वो अपने समर्थन में भीड़ बढ़ाने और बन्द को सफल बनाने के लिए कई बार लोगों से ज़बरदस्ती बन्द में शामिल होने का दबाव डालते हैं जिसकी वजह से आपस में झगड़ा हो जाता है।" मैंने कहा, "किसी उदाहरण से बताओ।" सोनी एवं कोमल ने कहा, "सर, बाज़ार में हरिजनों की दुकान तो बहुत कम होती हैं सिर्फ़ उनकी दुकानों के बन्द रहने से सरकार पर क्या फ़र्क़ पड़ने वाला था, इसलिए अपने समर्थन में ज़बरदस्ती दूसरी दुकानों को बन्द करवाया गया, और जो बन्द नहीं कर रहे थे उनके साथ भीड़ ने लूटपाट कर ली।"

मैंने एक बार फिर से पूछा, "आख़िर एससी / एसटी का मुद्दा क्या था जिसके लिए भारत बन्द बुलाना पड़ा।" कोमल ने कहा, "सर, मैं बताती हूँ कि मुद्दा क्या था। अभी कुछ दिन पहले सर्वोच्च न्यायालय का एक फ़ैसला आया था, जिसमें कहा गया कि एससी / एसटी एक्ट के अनुसार यदि किसी व्यक्ति के ख़िलाफ़ शिकायत दर्ज होती है तो उसकी

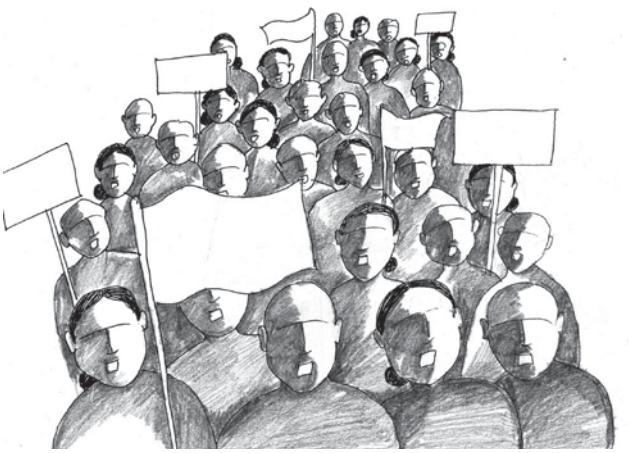

चित्र : हीरा धुर्वे

जाँच होगी और जाँच में शिकायत सही पाई जाने के बाद ही गिरफ़्तारी होगी। जबकि पहले यह था कि यदि किसी एससी / एसटी समुदाय के व्यक्ति को जाति सूचक शब्दों से बुलाया या अपमानित किया जाता था तो शिकायत के साथ ही उसकी गिरफ़्तारी ज़रूरी होती थी, और किसी को भी अग्रिम जमानत नहीं मिल सकती थी।"

कक्षा के कई बच्चों ने कहा, "सर, हमें यह समझ नहीं आ रहा है कि एससी / एसटी एक्ट से सम्बन्धित पहले के क़ानून एवं नए क़ानून में फ़र्क़ क्या है?" मैंने एससी / एसटी एक्ट के प्रावधानों पर बात करते हुए बताया कि पूर्व क़ानून में किस तरह के बदलाव आए हैं, और इसके किस-किस तरह के प्रभाव हो सकते हैं। मैंने दोनों समुदायों के पक्षों को रखने का प्रयास किया कि दोनों ओर से किस-किस तरह के तर्क दिए जा रहे हैं। ये बात करते हुए मुझे समझ में आया कि दरअसल बच्चों को हाई कोर्ट एवं सुप्रीम कोर्ट के बारे में कोई ख़ास जानकारी नहीं है। अतः यहाँ पर मेरे द्वारा न्याय व्यवस्था के ढाँचों पर बच्चों के साथ संक्षिप्त बातचीत ही की गई।

मैंने सवाल उठाया, "यदि देश की सर्वोच्च अदालत ने कोई फ़ैसला दे दिया है तो फिर क्या किया जा सकता है?" बच्चों का जवाब था, "सरकार उसको बदल सकती है।" मैंने पूछा, "कैसे?", तो कक्षा में सन्नाटा था। कोमल ने कहा, "सर, ये तो नहीं पता लेकिन अंकल कह रहे थे कि पहले भी हमारी सरकार ने सर्वोच्च अदालत का फ़ैसला बदला है।" इससे आगे उसकी जानकारी नहीं थी। मुझे समझ में आ गया कि यह शाहबानो केस की बात कर रही है। यहाँ पर संक्षेप में शासन के तीनों अंगों की जानकारी दी गई और बताया गया कि क़ानून बनाने का काम संसद करती है। क़ानून संवैधानिक है या नहीं ये देखने का काम न्यायालय करता है, और क़ानूनों का पालन हो रहा है या नहीं ये कार्यपालिका की ज़िम्मेदारी होती है।

इसके बाद संविधान में व्यक्ति को किस-किस तरह की स्वतंत्रता दी गई है, इसपर बात की गई। स्वतंत्रता को समझाते हुए बताया गया कि संविधान में किसी को नुक़सान पहुँचाकर अपनी बात मनवाने का कोई प्रावधान नहीं है, चाहे व्यक्तिगत नुक़सान हो या फिर सरकारी सम्पत्ति का। जब सरकारी सम्पत्ति को नुक़सान पहुँचाते हैं तो उसको पुनः ठीक करने का सारा भार जनता पर ही आता है। इस तरह की तोड़फोड़ की वजह से टैक्स और महँगाई बढ़ती है। हम सबको अपने आसपास हमेशा नज़र रखनी चाहिए। यदि कोई ग़लत काम हो रहा है या हमें कोई ग़लत काम में शामिल होने के लिए उकसा रहा है तो उससे सवाल ज़रूर पूछने चाहिए। कई बार सवाल पूछने भर से आप उस समस्या से बच सकते हैं। घटना चाहे घर में घटित हो या समाज में या फिर अपने स्कूल में, हमें उसे समझने का प्रयास करना चाहिए और अपने विवेक से अपना निर्णय करना आना चाहिए। केवल किसी के कहने से किसी काम में शामिल नहीं होना चाहिए।

सामाजिक विज्ञान से जुड़े दस्तावेज़ों के आलोक में मेरा विश्लेषण

सामाजिक विज्ञान का शिक्षण : राष्ट्रीय फ़ोकस समूह का आधार पत्र कहता है, "एक सार्थक सामाजिक विज्ञान पाठ्यचर्या अपनी पाठ्य सामग्री के चयन व गठन द्वारा विद्यार्थियों में समाज की आलोचनात्मक समझ विकसित करने में समर्थ होती है, अतः यह एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। नए आयामों और सरोकारों को शामिल किए जाने की अपार सम्भावनाएँ हैं, विशेषत: विद्यार्थियों के जीवन के निजी अनुभवों से।"

वर्तमान समाज और राजनीति में हड़ताल, धरना-प्रदर्शन, आदि आम घटनाएँ हैं, जिनसे समाज प्रभावित होता है। हमारी कक्षा में दो तरह के बच्चों का समूह था– एक, इन घटनाओं के दर्शक या इनसे प्रभावित लोगों का, और दूसरा, इसमें भागीदारी करने वाला। दोनों के अपने अनुभव और अपना विश्लेषण था।

लोकतंत्र, संवैधानिक मूल्य जैसे सैद्धान्तिक मसलों पर बच्चों की राय का विश्लेषण करें तो कई व्यवहारिक पहलू खुलकर आते हैं। जैसे– 'क़ानूनी तरीक़े से अधिकार हासिल किए जा सकते हैं।' 'अपने अधिकारों की लड़ाई के लिए दूसरे का अधिकार छीनना अन्याय है।' 'दबाव बढ़ाने के लिए बन्द या हिंसा को हथियार के रूप में इस्तेमाल करना।' चर्चा के ऐसे कई सारे पहलू कक्षा में उभरकर आए जिनपर ठहरकर

विस्तार से बात करने की ज़रूरत महसूस हुई। लोकतांत्रिक प्रक्रिया में विरोध या आन्दोलन का स्थान क्या है, अगर स्थान है तो उसका स्वरूप क्या हो, क्या लोकतांत्रिक संरचना में हिंसा स्वीकार्य है, अगर हिंसा होगी तो लोकतांत्रिक ढाँचा कमज़ोर होगा या मज़बूत, आदि।

सामाजिक विज्ञान स्वतंत्रता, विश्वास, पारस्परिक सम्मान और विविधता के प्रति सम्मान जैसे मानवीय गुणों के लिए एक जनाधार का निर्माण करने और उसका विस्तार करने की नियामक ज़िम्मेदारी का वहन करता है। अतः सामाजिक विज्ञान शिक्षण का ध्येय बच्चों को एक नैतिक और मानसिक ऊर्जा प्रदान करना होना चाहिए, ताकि वे स्वतंत्र रूप से सोच सकें और अपनी विशिष्टता खोए बिना उन सामाजिक बलों का सामना कर सकें जिनसे इन मूल्यों को ख़तरा है। सामाजिक विज्ञान शिक्षण द्वारा इस उद्देश्य की प्राप्ति बच्चों में उन सामाजिक विषयों पर विवेचनात्मक चिन्तन की योग्यता को बढ़ावा देकर की जा सकती है, जो व्यक्तिगत और सामाजिक हितों के बीच मौलिक सहभाव का वहन करते हैं।

चित्र : हीरा धुर्वे

आलोचनात्मक चिन्तन के मद्देनज़र शिक्षकों और विद्यार्थियों दोनों के लिए एक ऐसी व्यापक पाठ्यचर्या की कल्पना की गई है, जिसमें ज्ञान प्राप्ति में बिना किसी दबाव के विद्यार्थियों और शिक्षकों की भागीदारी हो। ऐसी सहजता और सहभागिता के द्वारा ही विद्यार्थियों और शिक्षकों के लिए पठन-पाठन रुचिपूर्ण और आनन्ददायक बनाया जा सकता है। समाज में घट रही घटनाओं के उदाहरण से पाठ्यचर्या के विषय को जोड़ेंगे तो बच्चों को उसे विभिन्न तरीक़ों से समझने और विश्लेषित करने के मौक़े मिलेंगे। जैसा कि मेरी कक्षा में एससी / एसटी से सम्बन्धित विवाद कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका के सम्बन्धों और कार्य पद्धति को समझने तक गया। इस तरह यह एकतरफ़ा सूचनाओं का हस्तान्तरण नहीं रहा बल्कि विचार-विमर्श का माध्यम बन गया।

अकसर शिक्षक अपनी बात में कहते हैं कि सर, पाठ्यक्रम पूरा हो जाए यही काफ़ी है। पुस्तक के बाहर के मुद्दों पर कब और कैसे बात करें, समय ही नहीं मिलता। स्कूलों में आमतौर पर इस तरह के मुद्दों से बचने की कोशिश होती है। इसके दो कारण हो सकते हैं और दोनों ही उचित प्रतीत नहीं होते। या तो हमारे स्वयं के विचार इन मुद्दों के बारे में ऐसे हैं जिन्हें हम सार्वजनिक रूप से साझा नहीं करना चाहते, क्योंकि वो तर्कपूर्ण और संविधान सम्मत नहीं हैं। या हम छात्रों की मानसिक परिपक्वता को लेकर आश्वस्त नहीं हैं कि वो उन मुद्दों पर विचार कर पाएँगे। समकालीन मुद्दों में हमारी भावनाएँ गुँथी होती हैं और उन्हें अलग कर तर्कपूर्ण चर्चा करना हमारे लिए सहज और आसान नहीं है। इसलिए अकसर हम उन्हीं मुद्दों की बात करना चाहते हैं जो देश और काल दोनों में विस्थापित हों।

जबकि मेरा अनुभव कहता है कि बच्चे काफ़ी अच्छी तरह से ऐसे मुद्दों पर न सिर्फ़ चर्चा करते हैं बल्कि अपने विवेक से घटनाओं का विश्लेषण भी करते हैं। उदाहरण के लिए, जब मैं बच्चों से भारत बन्द के सामाजिक प्रभावों

पर चर्चा कर रहा था तो उन्होंने कहा कि सर, जब हम ग़ैर-क़ानूनी तरीक़ों से अपने अधिकारों की पैरवी करते हैं तो समाज में आपसी टकराहट बढ़ जाती है। इसी का नतीजा अभी भारत बन्द के दौरान देखने को मिला कि कितनी जान माल की हानि समाज को उठानी पड़ी। उन्होंने यह भी बताया कि क्यों आवश्यक सेवाओं को बन्द से अलग रखा गया, मसलन– ऐम्बुलेंस, अस्पताल और दवाओं की दुकान, आदि। इस बातचीत से स्पष्ट हो जाता है कि 14-15 साल के बच्चे बहुत अच्छे-से अपने आसपास की घटनाओं का न सिर्फ़ अवलोकन करते हैं, बल्कि उनपर अपने अभिमत भी तैयार करते हैं।

अतः बच्चों के साथ उन सामाजिक मुद्दों पर कक्षा-कक्ष में अवश्य बात करनी चाहिए जो उनके और आसपास के समुदायों / क्षेत्रों में घटित होते हैं और बच्चे उनके भागीदार बन रहे होते हैं। यदि हमने अपनी कक्षाओं में इस तरह के अवसर नहीं बनाए तो हमारे देश के भावी नागरिक एकांगी दृष्टिकोण लेकर आगे बढ़ेंगे और इससे लोकतंत्र के सामने नई चुनौतियाँ उभरकर आएँगी।

सन्दर्भ

1. *सामाजिक विज्ञान का शिक्षण : राष्ट्रीय फ़ोकस समूह का आधार पत्र*
2. प्रभात प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित और रुद्रांक्षु मुखर्जी द्वारा सम्पादित *भारत के महान भाषण*
3. जयपुर शहर के सरकारी स्कूलों में हुए कक्षा-कक्ष के अनुभव।

महमूद ख़ान पिछले दो दशक से शिक्षा के क्षेत्र में अध्यापन एवं प्रशिक्षण कार्य में सक्रिय रहे हैं। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, जयपुर में बतौर सामाजिक विज्ञान रिसोर्स पर्सन कार्यरत हैं।

सम्पर्क : mahmood.khan@azimpremjifoundation.org